जाति व्यवस्था

दक्षिण भारत का एक देशी आविकार?

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

अनुसंधान से पता चला है कि पितृवांशिकता और जनांकिक घटनाओं ने ही सामाजिक स्तरीकरण को जन्म दिया था, किसी बाहरी हस्तक्षेप ने नहीं।

भारत में जाति व्यवस्था का स्रोत क्या है? हमारे देश के इतिहास में यह एक विवाद का विषय रहा है। क्या यह बाहर से आयात की गई थी? विद्वानों का एक शक्तिशाली समूह मानता है कि इस देश में जाति व्यवस्था उन लोगों ने स्थापित की थी जो पश्चिमी एशिया से आए थे और 3-4 हज़ार साल पहले यहां बस गए थे।

यह 'बाह्य' या 'अधीनता' मॉडल आम तौर पर स्वीकार्य रहा है। दूसरी ओर, कई विद्वान मानते हैं कि जाति व्यवस्था स्वयं यहां के मूल निवासियों के बीच ही 'सांस्कृतिक विसरण' का परिणाम है।

दूसरे शब्दों में, सामाजिक ऊंच-नीच या स्तरीकरण आयातित चीज़ नहीं बल्कि देशी आविष्कार है। इस वैकल्पिक मॉडल का तकाज़ा होगा कि जाति व्यवस्था हमारे साथ ज़्यादा पुराने समय से रही होगी। यानी यह व्यवस्था उन लोगों में रही होगी जो भारत में प्लायस्टोसीन काल में (यानी करीब 30 से 10 हज़ार वर्ष पूर्व) बसे रहे होंगे।

तो भारत में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के इस सवाल को कैसे संबोधित करें?

मदुरै कामराज विश्वविद्यालय की जीनोग्राफिक प्रयोगशाला के जी. अरुण कुमार और उनके साथियों का एक शोध पत्र हाल ही में शोध पत्रिका *प्लॉस वन* के 28 नवंबर 2012 के अंक में प्रकाशित हुआ है। इसमें उपरोक्त सवाल की पड़ताल करने के लिए जेनेटिक और मानव वैज्ञानिक तरीकों का मिला-जुला उपयोग किया गया है।

शोध पत्र का निष्कर्ष है कि वर्तमान सामाजिक स्तरीकरण तमिलनाडु के आदिवासी समूहों में 'आर्यों' के आगमन से पूर्व ही मौजूद था। दूसरे शब्दों में, यह एक देशज आविष्कार था।

मैंने इस परियोजना के मुख्य अन्वेषक प्रोफेसर रामासामी पिचप्पन से अध्ययन की विधियों, परिणामों और विश्लेषण के बारे में ज़्यादा विस्तृत जानकारी चाही। प्रोफेसर पिचप्पन पहले मदुरै कामराज विश्वविद्यालय में थे और आजकल चेन्नै के चेट्टिनाड एकेडमी ऑफ रिसर्च एंड एजूकेशन में कार्यरत हैं।

वे जीनोग्राफिक प्रोजेक्ट पर कई सालों से काम करते रहे हैं। उन्होंने बताया कि शोध टीम ने दो महत्त्वपूर्ण तथ्यों का लाभ लिया। एक तो यह एक मानव वैज्ञानिक तथ्य है कि जाति व्यवस्था पितृवंश के ज़रिए जारी रहती है। दूसरे शब्दों में, जाति व्यवस्था पीढ़ी-दर-पीढ़ी पितृवंश यानी पुरुष के वंश के माध्यम से चलती है।

दूसरा तथ्य एक जेनेटिक तथ्य है। तथ्य यह है कि पिता अपने बेटों को तो अपना 'वाय' गुणसूत्र प्रदान करते हैं, मगर बेटियों को नहीं। (स्त्रियों में ऐसा कोई भेदभाव नहीं होता। वे अपने बेटे-बेटियों दोनों को अपना 'एक्स' गुणसूत्र ही सौंपती हैं। इसके अलावा वे अपनी सभी संतानों को एक और कोशिकीय उपांग सौंपती हैं - माइटोकॉण्ड्रिया जिसे कोशिका का ऊर्जा घर कहते हैं।)

जाति निर्धारण की पितृ-आधारित आनुवंशिकता और 'वाय' गुणसूत्र, इन दो बातों के मिले-जुले उपयोग से पिचप्पन और उनके साथियों ने तमिलनाडु के चुनिंदा भागों के 1680 से ज़्यादा लोगों का अध्ययन किया।

इनमें से कई लोग आदिवासी हैं जो अलग-थलग रहते हैं और भोजन के लिए शिकार/संग्रह, भोजन की तलाश

और मौसमी शुष्क खेती पर निर्भर हैं। उनमें विवाह सम्बंध अपनी ही उप-जातियों में होते हैं (जैसे पलियन, पुलयार, इरुला, कादर, तोड़ा, वन्नियार)।

शोधकर्ताओं ने इन लोगों की कई पीढ़ियों में 'वाय' गुणसूत्र का विश्लेषण किया और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक रीति-रिवाज़ों का भी अध्ययन किया।

इनकी तुलना गैर-आदिवासी समूहों से की गई (जैसे ब्राह्मण, सौराष्ट्रियन, वदामा लोग जो इंडो-युरोपीय भाषा समूह के हैं)।

परिणाम चौंकाने वाले थे। शोधकर्ताओं को इस बात के सशक्त प्रमाण मिले कि इनकी जेनेटिक संरचना मूलतः उनके जीवन निर्वाह के तौर-तरीकों से जुड़ी है। दूसरे शब्दों में पिता अपना व्यवसाय और जीवन-शैली अपने पुत्रों को विरासत में सौंपते हैं।

इसके अलावा, शोधकर्ताओं ने 'वाय' गुणसूत्र के एक ऐसे हिस्से का विश्लेषण किया था जो पुनर्मिश्रण के कारण बदलता नहीं है। इस विश्लेषण के आधार पर वे यह समझ पाए कि शारीरिक लक्षणों और आदतों की जेनेटिक वंशावली क्या है। इस तरह के विश्लेषण को जिनेटिक वैज्ञानिक कोलेसेंस विश्लेषण कहते हैं।

इस विश्लेषण के आधार पर वे यह निष्कर्ष निकाल पाए कि इन देशज भूमिपुत्रों में सामाजिक स्तरीकरण आज से 4 से 6 हज़ार वर्षों पहले स्थापित हो चुका था। यह पश्चिम एशिया से आव्रजन से काफी पहले की बात है।

शोधकर्ता कहते हैं, "वाय गुणसूत्रों के पैटर्न, आबादी में विविधता पैदा होने की प्राचीनता और विभेदीकरण के काल की सर्वोत्तम व्याख्या दक्षिण भारत में कृषि टेक्नॉलॉजी के प्रादुर्भाव के आधार पर की जा सकती है।"

अर्थात, आबादी में विभेदीकरण वर्ण आधारित जाति व्यवस्था से पहले ही स्थापित होने लगा था। इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक स्तरीकरण और जीन-पुंज के मुक्त प्रवाह को बाधित करने का काम पितृवंशात्मकता और जनांकिक घटनाओं ने किया था, बाह्य हस्तक्षेप ने नहीं।

गुणसूत्र हमें जेनेटिक इतिहास बताते हैं। जनांकिकी हमें यह बताती है कि लोग स्वयं को कैसे बांटते हैं और कैसे एक-दूसरे के साथ मिश्रित होते हैं और पीढ़ियों को जन्म देते हैं। जलवायु की परिस्थिति, औज़ारों व टेक्नॉलॉजी का आविष्कार और उपयोग वे कारक हैं जो लोगों को साथ लाए हैं और उन्हें एक समूह के रूप में बसने या प्रवास करने को प्रेरित किया है।

संस्कृति और सामाजिक व्यवस्थाओं ने लोगों को विभाजित किया है और उन्हें स्तरीकृत समाजों के रूप में समूहबद्ध किया है। यह स्तरीकरण या विभेदन विभिन्न समूहों के बीच जीन-पुंज के प्रवाह को बाधित या सीमित करता है। ये समूह ही जातियां हैं।

और अंत में इसी की एक विडंबना देखिए। वास्तव में संभोग व विवाह जीन्स को मिश्रित करने के तरीके हैं। जितना विविधतापूर्ण यह मिश्रण होगा, उतने ही विविधतापूर्ण और समृद्ध लक्षण पैदा होंगे। जेनेटिक अध्ययनों से पता चलता है कि दुनिया एक विशाल परिवार है। यही बात महा उपनिषद में इन शब्दों में कही गई थीः अयं बंधुरायम नेति गणना लघुचेतासम्। उदारचरितानम् तु वसुधैव कुटुंबकम्। (छोटे लोग ही यह भेद करते हैं कि यह हमारा सम्बंधी है और वह अजनबी है। उदार व्यक्ति के लिए तो पूरा विश्व एक परिवार समान है।)

मगर जाति या कोई भी ऐसा सामाजिक विभाजन इस विशाल समंदर को जीन्स के छोटे-छोटे पोखरों में बदल देता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत सजिल्द **उपलब्ध है**

स्रोत के पिछले अंक